सेवा की राह

जानकी

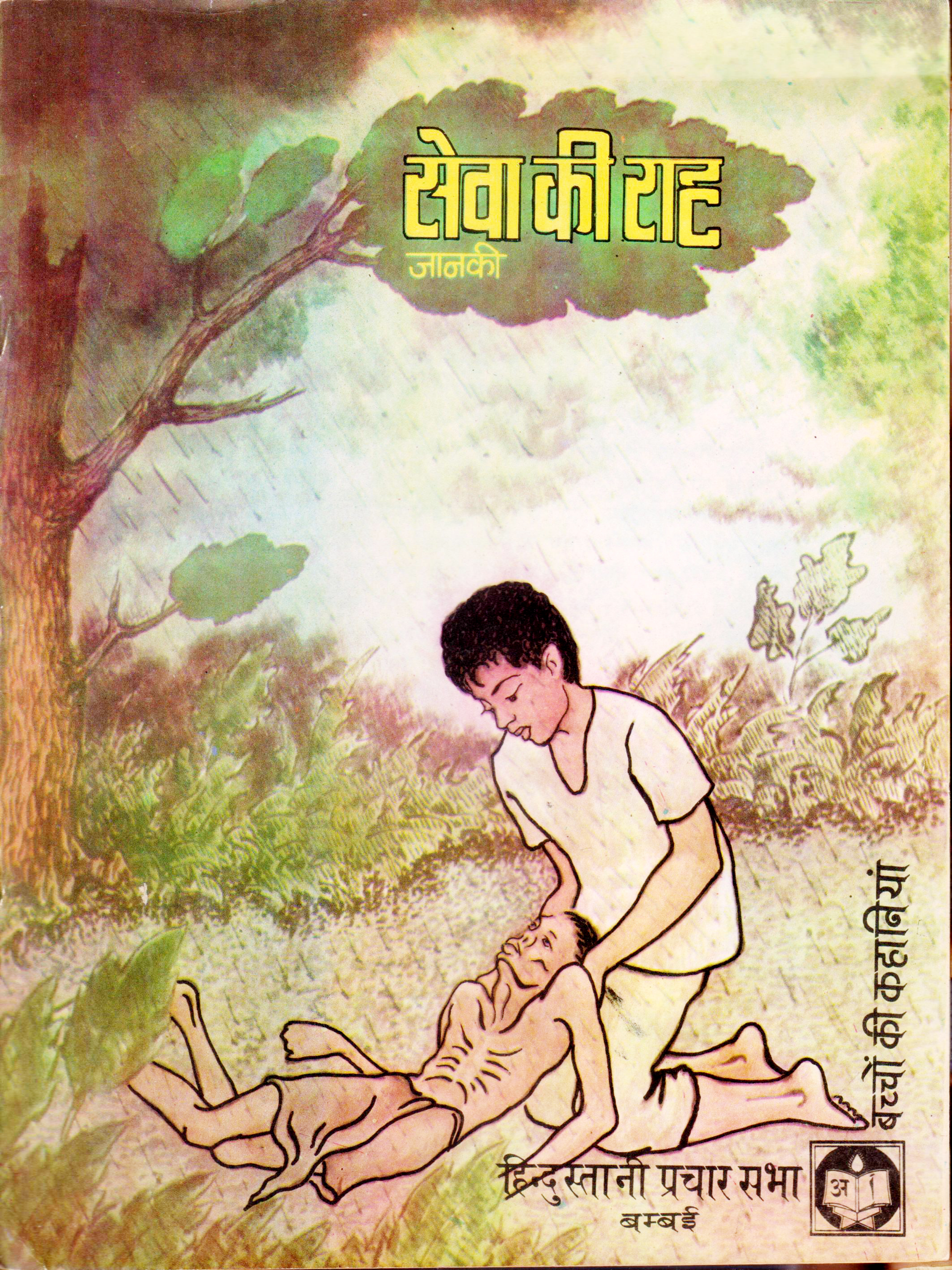

बच्चों की कहानियां

हिन्दुस्तानी प्रचार सभा
बम्बई

हमारी बात

हमारे देश की संस्कृति दुनिया में सबसे पुरानी और काफी समृद्ध है। मगर आपसी झगडों, जलन और बैर की वजह से हम कमज़ोर हो गये हैं और इसी वजह से डरी-सहमी हालत में जी रहे हैं। नये ज़माने की शिक्षा भी हमें सुधार नहीं पाई है। इसीलिए इस कमजोर और खतरनाक हालत से हम उबर नहीं पा रहे हैं। फिर भी यह हक़ीक़त है कि हमारी संस्कृति अत्यंत जीवंत है, कभी मिट नहीं सकती है।

दूसरे प्राणियों के मुक़ाबले आदमी में यह एक विशेषता है कि उसमें धर्म की सूझबूझ है। अच्छा-बुरा, धर्म-अधर्म परखने का उसे विवेक है। मैं तो इसे ही सच्चा धर्म मानता हूं। 'धर्म' वही है जिससे आदमी का सुखी, सार्थक जीवन बनता है। धार्मिक इन्सान समझता है कि दूसरों के सुख में उसका भी सुख है। दूसरों को तबाह करके कोई सुखी नहीं हो सकता। दूसरों के दुःख से जो सुख उठाता है, वह अधर्मी है।

सच्चाई और अहिंसा, धर्म पर चलने के दो रास्ते हैं। दुनिया के सभी धर्मों में इन दो बातों पर ज़ोर दिया गया है। हिन्दू, इस्लाम, बौद्ध, ईसाई, पारसी, जैन, सिख आदि सभी धर्मों के पैग़म्बरों ने धर्म के जिन आदर्शों की बात कही है, वह हर इन्सान के लिए समान रूप से लागू होती है। हमारे देश की परंपरा में सब धर्मों के लिए इज्ज़त की भावना रही है। हिन्दू धर्म का दायरा बहुत बड़ा और सबका भला चाहनेवाला रहा है। अफ़सोस है तो इस बात का कि हम लोगों में एक के बाद एक कमज़ोरियां आती गईं और एक उदार धर्म की अनमोल दौलत हम संभाल नहीं सके।

आज इस बात की ज़रूरत है कि दुनिया के विकसित धर्मों में हमारे लिए जो आवश्यक बातें कही गयी हैं उन्हें हम समझें और अपने जीवन में उन पर चलने की कोशिश करें।

नई पीढ़ी को सही समझ और शिक्षा देने के लिए ऐसे विचार उनके सामने रखना ज़रूरी है जिससे वे आदर्शों की तरफ प्रेरित हों और ज़िन्दगी का सही रास्ता उन्हें मिल सके।

हिन्दुस्तानी प्रचार सभा ने इसी उद्देश्य से दुनिया के मुख्य धर्मों में जो शिक्षाप्रद कहानियां हैं, बडे-बडे संत-पैगम्बरों की ज़िन्दगी में जो सच्ची घटनाएं हुई हैं, उन्हें लेकर एक सौ सचित्र पुस्तकें छापने की योजना बनाई है।

कहानियां इस तरह रखी गयी हैं कि बच्चों को वे उपदेश नहीं, जीवन से जुडी हुई मालूम हों और आसानी से समझ में आ जायें। मुझे उम्मीद है कि बच्चों के माता-पिता भी इन कहानियों को दिलचस्पी से पढ़ेंगे और अपने जीवन को समृद्ध करेंगे।

मुझे उम्मीद है कि इस कोशिश को पसन्द किया जायेगा, इस पर अमल किया जायेगा और इसका प्रचार किया जायेगा।

मोरारजी देसाई

अध्यक्ष,
हिन्दुस्तानी प्रचार सभा

© हिन्दुस्तानी प्रचार सभा, १९८१

वत्रकार :
मलाक्ष शेणै

मूल्य :
दो रुपये

मुद्रक :
अकील दीवानजी
ऑनलुकर प्रेस
१६, सासुन डॉक
कोलाबा, बम्बई–४०० ००५

प्रकाशक :
वाडीलाल डगली
मानद मंत्री
हिन्दुस्तानी प्रचार सभा
महात्मा गांधी मेमोरियल बिल्डिंग
बम्बई–४०० ००२

एकमात्र विक्रेता

एस० चन्द एन्ड कंपनी लि०
मुख्य कार्यालय : रामनगर, नयी दिल्ली-११००५५
शो रूम : ४/१६-बी, आसफ अली रोड, नयी दिल्ली-११०००२

शाखाएं :

अमीनाबाद पार्क, लखनऊ-२२६००१
२८५/जे, बिपिनबिहारी गांगुली स्ट्रीट, कलकत्ता-७०००१२
सुल्तान बाजार, हैदराबाद-५००००१
३, गांधी सागर ईस्ट, नागपुर-४४०००२
खजांची रोड, पटना-८००००४
माई हीरां गेट, जालन्धर-१४४००८
१५२, अन्ना सलाए, मद्रास-६००००२
ब्लैकी हाउस, १०३/५, वालचन्द हीराचन्द मार्ग, बम्बई ४००००१
के० पी० सी० सी० बिल्डिंग, रेसकोर्स रोड, बंगलोर-५६०००६
६३१-७ महात्मा गांधी रोड, एरनाकुलम, कोचीन-६८२०११

सेवा की राह

जानकी

हिन्दुस्तानी प्रचार सभा

बम्बई

सेवा की राह

उनका नाम था दामियेन । होनोलूलू देश के रहनेवाले थे । उम्र थी सिर्फ तेंतीस वर्ष की । स्वस्थ शरीर और बहुत ही लुभावना व्यक्तित्व था उनका । घरवालों, दोस्तों को उनसे बड़ी उम्मीदें थीं । दामियेन ने अपनी पढ़ाई पूरी कर कर ली तो उनके सामने सवाल आया कि अब आगे क्या करना है । उनके परिचितों ने तरह-तरह के सुझाव दिये, और सब उत्सुकता से प्रतीक्षा करने लगे कि देखें, दामियेन क्या फैसला करता है ।

दामियेन ने फैसला कर लिया और अपने माता-पिता को उसने लिखा, "मैंने अपने भविष्य का फैसला कर लिया है। मैं मोलोकाई द्वीप जा रहा हूं और वहीं रहकर कोढ़ियों की सेवा करूंगा । मैं कोढ़ियों की शारीरिक पीड़ा देखकर बहुत समय से खून के आंसू बहाता रहा हूं ।"

दामियेन का फैसला लोगों ने सुना और अचंभित रह गये । इतना प्रतिभाशाली युवक और कोढ़ियों के बीच अपनी जिंदगी बर्बाद करेगा ?

एक मित्र ने दामियेन को लिखा,

"दामियेन, तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है क्या? इतने खतरनाक रोगियों के बीच रहोगे तुम, तो तुम्हें भी वह रोग हो जायेगा।"

दूसरे ने चेतावनी दी, "कोढ़ियों की सेवा हंसी-मजाक नहीं है। उस तकलीफ भरी जिंदगी में तुम कैसे रहोगे दामियेन?"

तीसरे ने प्रार्थना की, "दामियेन, भगवान के लिए अपना फैसला बदलो। मोलोकाई द्वीप जाना मौत के मुंह में जाना है।"

दामियेन ने सबकी बात सुनी लेकिन अपने फैसले पर अटल रहा। कोढ़ से गले, घिनौने रोगी उसकी आंखों के सामने नाचते रहते और दामियेन को लगता कि वे बराबर यही सवाल पूछ रहे हैं— जिन्हें देखनेवाला कोई नहीं, उन सबको जानवरों की मौत मरने देना कहां की इंसानियत है? मोलोकाई द्वीप को हवाई द्वीपों की सरकार ने कोढ़ियों के लिए सुरक्षित कर दिया था। सब जगह से कोढ़ी समेटकर लाये जाते थे और इस द्वीप पर छोड़ दिये जाते थे। जो एक बार मोलोकाई द्वीप चला जाता था वह फिर कभी लौटकर नहीं आता था। दामियेन ने यह सब पढ़ा था और तब उसने मोलोकाई जाने का फैसला किया था।

दामियेन ने कहा, "मैं प्रभु यीशु के चरणों में समर्पित हो चुका हूं। वे मुझसे जैसा चाहेंगे वैसा काम लेंगे। वे मिस्त्री हैं और मैं उनके हाथ का औजार हूं।"

सबके विरोध के बावजूद दामियेन मोलोकाई द्वीप के लिए चल पड़े। अब उनका नाम था फादर दामियेन। सब पूछते थे कि तुम्हें सेवा ही करनी है तो दुखी लोगों की यहां क्या कमी है! कोढ़ियों की सेवा ही क्यों करना चाहते हो तुम?

फादर दामियेन ने जवाब में ईसा मसीह का ही एक वाक्य दुहरा दिया... "दुखियों में भी इन सबसे दुखी लोगों के लिए तुम जो भी करोगे, वह तुम मेरे लिए करोगे।"

फादर दामियेन मोलोकाई द्वीप पहुंचे तो वहां किसी ने उनका स्वागत नहीं किया। जैसे खुशी-खुशी किसी ने उन्हें विदा नहीं किया था, वैसे ही किसी ने हंसकर उनका स्वागत भी नहीं किया।

सेवा की राह इतनी ही कठिन होती है। वहां तालियां बजानेवाला कोई नहीं होता।

फादर दामियेन सेवा की जिस राह पर चल पड़े थे, उस राह पर फूल बहुत कम, कांटे बहुत ज्यादा थे। फूल खिलाने के लिए दामियेन खाद बनने को तैयार थे।

मोलोकाई पहुंचकर फादर दामियेन ने पहली बार देखा– हजारों कोढ़ी! किसी का हाथ नहीं था, किसी की नाक आधी हो गयी थी, किसी के सड़े-गले पांव से पीव बह रहा था। अथाह समुद्र के बीच स्थित इस द्वीप पर अथाह पीड़ा थी। हजारों लोग अपने मौत की प्रतीक्षा कर रहे थे।

इन कोढ़ियों के बीच फादर दामियेन ही एकमात्र ऐसे थे, जिनके सभी अंग सलामत थे। कोढ़ी उन्हें घूर-घूरकर देखते – यह कौन आदमी हमारे बीच आ गया जिसे कोढ़ हुआ ही नहीं है?

फादर दामियेन कोढ़ियों की बेरुखी भूलकर, उनकी सेवा में जुट गये। सबके घाव साफ करना, दवा लगाना, नहलाना, बिस्तर ठीक करना– दामियेन तो मशीन की तरह, बस काम में लगे ही रहते। किसी ने उनको न थकते देखा था और न कभी गुस्साते देखा था। वे काम को प्रार्थना समझकर उसमें डूबे रहते थे।

एक दिन उन्होंने कोढ़ियों से कहा, "हर इंसान को भगवान ने ही बनाया है। वह सबको समान रूप से प्यार करता है। लेकिन जिस तरह मां अपने कमजोर बेटे को ज्यादा प्यार करती है,

उसी प्रकार ईश्वर अपनी रोगी संतानों को सबसे ज्यादा चाहता है।"

सबकी घृणा और उपेक्षा के पात्र रोगियों ने पहली बार स्नेह और सम्मान से भरा यह वाक्य सुना था। वे एकटक फादर दामियेन को देखते रहे। फादर दामियेन ने अबतक उनके शरीर की सेवा की थी। आज उन्होंने उनके दिल के जख्म पर मरहम लगा दिया।

फादर दामियेन ने मोलोकाई द्वीप जीत लिया।

उन्होंने सोचा, "रोगी खुले आकाश के नीचे क्यों रहें? इनके लिए मकान बनाना चाहिए।"

देखते-देखते मोलोकाई की सूरत बदलने लगी। पहले रोगियों के लिए घर बने, फिर बना एक छोटा, पवित्र-सा गिरजाघर। उसके बाद स्कूल खुला, अनाथों के लिए अनाथालय खुला। बस्ती में नालियां बनायी गयीं और पीने के पानी का इंतजाम हुआ।

फादर दामियेन एक मजदूर की तरह इस काम में जुटे रहते। यह काम खत्म होता तो डाक्टर के रूप में काम करने लगते। वे रोगियों को समझाते कि मैं भी तुममें से एक हूं।

कई वर्ष बीत गये। फादर के काम की चर्चा मोलोकाई द्वीप के बाहर फैलने लगी।

हवाई द्वीपों की महारानी को यह सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि एक स्वस्थ, भला इंसान कोढ़ियों के बीच में वर्षों से रहता आ रहा है। वे १८८१ में मोलोकाई द्वीप देखने आयीं। फादर दामियेन का काम देखकर वे आश्चर्य-चकित रह गयीं।

"मैं राज्य का सबसे बड़ा पुरस्कार देकर आपका सम्मान करती हूं", उन्होंने फादर दामियेन से कहा।

वापस जाकर उन्होंने पुरस्कार के साथ-साथ फादर दामियेन के लिए सोने की बनी सलीब भी भेजी। अपनी समझ से उन्होंने फादर को बहुत कीमती चीज भेंट की थी, लेकिन फादर का दिल इन पुरस्कारों-सम्मानों से ऊपर उठ चुका था। उन्हें भगवान और इंसान की तकलीफों के अलावा दूसरी किसी चीज का भान न था।

एक बार एक मित्र दामियेन से मिलने आये। उनका अस्त-व्यस्त कमरा देखकर वे उसे ठीक करने लगे तो उन्हें एक धूल-धूसरित डब्बा गिरा हुआ मिला। उन्होंने उस डब्बे को उठाकर झाड़ा और खोला तो उसमें महारानी का दिया हुआ सोने का सलीब था।

"क्यों दामियेन, शाही खिताब की ऐसी तौहीन की जाती है? तुमने इसे धूल में फेंक दिया है!" उसने चिढ़कर पूछा।

फादर दामियेन धीरे से बोले, "मुझे

इनकी चाह होती तो मैं मोलोकाई नहीं आता मित्र ! मैं इसकी खातिर यहां नहीं आया हूं । मेरी खोज दूसरी है ।"

दोस्त चुप रह गया ।

बारह साल कोढ़ियों की सेवा में बीत गये । दिन बीतते जाते और दामियेन की सेवा करने की तीव्रता बढ़ती जाती । दिन किधर से आता और रात किधर निकल जाती, दूसरे ही देखते, दामियेन को इसका पता भी नहीं चलता । लेकिन दामियेन को एक कमी बराबर लगती रही । वे ऐसा महसूस करते कि मैं रोगियों की सेवा तो जरूर करता हूं, लेकिन मैं उनके साथ एक नहीं हो पाता हूं क्योंकि मैं खुद कोढ़ी नहीं हूं ।

और बारह साल बाद, एक दिन अचानक ही उन्होंने पाया कि उनकी यह कमी दूर हो गयी है । शाम को पांव धोने के लिए उन्होंने गर्म पानी में पांव डाला तो उन्हें कोई गरमाहट पता नहीं चली । कोढ़ियों के बीच वर्षों के काम ने अब अपना असर दिखलाया । तब न तो सावधानी रखने के आज जितने साधन थे और न दवाओं की खोज हुई थी ।

फादर दामियेन कोढ़ी हो गये ।

उनके चेहरे पर एक दृढ़ शांति छा गयी । वे बोले, " भाइयो, अब मैं तुमसे भिन्न नहीं हूं । जितनी भिन्नता थी, वह ईश्वर ने समाप्त कर दी ।"

अब उनके काम में और तेजी आ गयी । वे जानते थे कि जल्दी ही कोढ़ उन्हें किसी काम के लायक नहीं रहने

देगा। इसलिए कम-से-कम समय में उन्हें ज्यादा-से-ज्यादा काम करना था।

पांच वर्षों तक वे मोलोकाई को रोगियों के ज्यादा-से-ज्यादा लायक बनाने में, रोगियों की सेवा में जुटे रहे। उनका अपना रोग भी फैलता रहा। १५ अप्रैल १८८९ को, ४९ वर्ष की आयु में फादर दामियेन ने सदा के लिए आंखें बंद कर लीं।

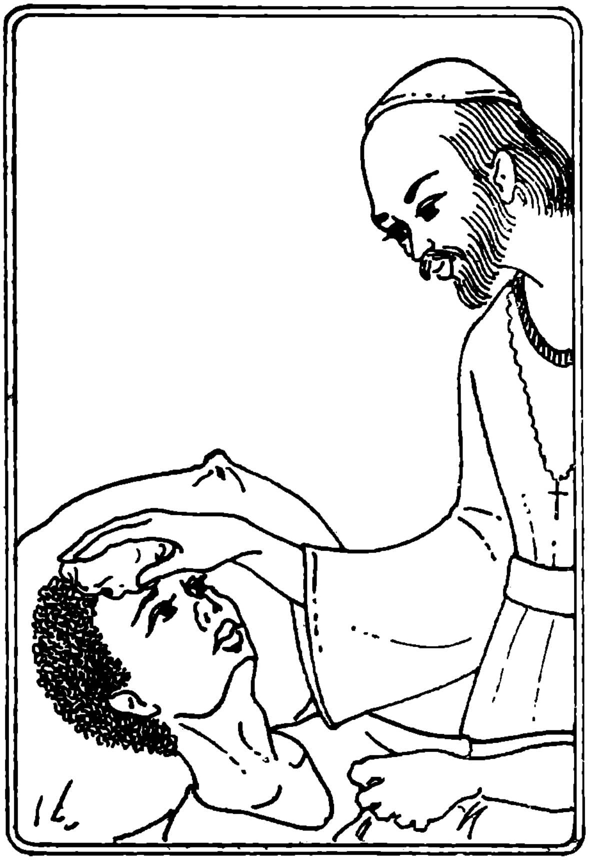

ईश्वर का एक सच्चा भक्त, ईश्वर के पास पहुंच गया।

मोलोकाई के कोढ़ियों ने कांपते हाथों से, दिल कड़ा करके उस फादर दामियेन को कब्र में सुला दिया, जिसने सारी जिंदगी उनके दुख-दर्दों को सहलाकर सुलाया था। ●

सेवा की राह

दुनिया में सुख ज्यादा है या दुख? यदि तुमसे कोई यह सवाल पूछे तो मालूम नहीं तुम क्या उत्तर दोगे! साधारणतः देखें तो दुख और सुख की मात्रा बराबर ही मालूम देती है। सड़क पर निकल जाओ तो जितनी संपन्नता दिखायी देगी, उतनी ही दरिद्रता भी दिखायी देगी; जितने स्वस्थ व्यक्ति दीखेंगे, उतने ही बीमार-रोगी भी दिखायी देंगे। जो दुखों की तरफ देखता है, वह कहता है कि दुनिया दुखों से भरी है। जो अपने सुख में ही डूबा है, वह कहता है कि दुनिया सुख से भरी है।

लेकिन एक तीसरी किस्म के लोग भी हैं जिनके लिए सुख-दुख के ये मापदंड बेमतलब हो जाते हैं। उनके लिए दुनिया मेहनत और सहायता के अवसरों से भरी होती है। वे दूसरों के दुख को अपने लिए चुनौती मान लेते हैं और उसे दूर करने में उन्हें जीवन का सारा संतोष मिल जाता है।

जरा सोचकर देखो, ऐसे किसी आदमी को तुम जानते हो?

एक सज्जन थे। अच्छी नौकरी करते थे और बेटे को बड़े अरमानों के

साथ पढ़ा रहे थे। चाहते थे कि बेटा खूब पैसा कमाये। बेटा वकील बना। वह ईमानदारी के साथ वकालत करना चाहता था, इसलिए पैसा नहीं कमा सका। शरीर खूब स्वस्थ-पुष्ट था उसका, और दिल तो जैसे साहस का खजाना था।

हर नयी चीज उसे अपनी तरफ आकर्षित करती थी, और जो भी काम वह करता था, उसमें सबसे आगे निकल जाने की चेष्टा करता। नयी चीजों की तरफ दौड़ने की उसकी वृत्ति ने उसे शराब की तरफ धकेला, मांसाहार भी करवाया, ईश्वर की खोज में हिमालय की गुफाओं तक दौड़ाया, रवींद्रनाथ ठाकुर की रचनाओं को समझने के लिए बंगला भाषा का अध्ययन करवाया। उसने सब किया लेकिन किसी बंधन में बंधा नहीं। आगे-से-आगे ही बढ़ता गया।

पढ़ाई के क्रम में वह दुनिया के महान विचारकों—मार्क्स, क्रोपाटकिन, रस्किन, गांधी, कुमारप्पा आदि की किताबों के संपर्क में आया, और इन विचारकों ने उसकी दुनिया ही बदल दी। वकालत के पेशे में उसे कोई आनंद नहीं मिलता था।

वह बराबर सोचता था "जो दिन के बारह-चौदह घंटे कठोर मेहनत करता है उसे पेट-भर खाना भी नहीं मिलता है, और मेरे पेशे के लोग पांच-दस मिनट जबान चलाते हैं और सैकड़ों रुपये वसूलते हैं। ऐसा क्यों है?" वह बराबर सोचता था कि यह अन्याय समाप्त होना चाहिए। लेकिन समाप्त हो कैसे? कोई भी नया काम करने के लिए पहले एक व्यक्ति को आगे आकर काम की शुरुआत करनी पड़ती है।

उस युवक ने आगे आकर एक नयी शुरुआत की। वकालत का पेशा छोड़ दिया और अपने मित्रों के साथ एक नया प्रयोग किया—श्रमाश्रम! ऐसे मित्रों की बस्ती, जो मेहनत करके अपना जीवन जीना चाहते हैं। एक नयी जिंदगी जीने की यह उनकी कोशिश थी।

आश्रम में सब मिलकर खेती करते और साग-भाजी लेकर बाजार में बेचने जाते। यहां अजीब-अजीब अनुभव आये। श्रमाश्रम के मित्रों ने तय किया था कि साग-भाजी की कीमत हम तय नहीं करेंगे। जिसे जरूरत होगी वह लेगा, और जितनी दे सकता है, उतनी कीमत देगा।

एक आदमी आया, "साग कैसे दे रहो भाई ?"

उत्तर मिला, " जैसे आप चाहेंगे, वैसे ही दे देंगे ।"

उसने समझा की भाजीवाला पागल है । मुंह बनाकर चलता बना ।

दूसरा आदमी आया, " कहो भैया, क्या भाव है भाजी ?"

उत्तर मिला, " जिस भाव से आप कहेंगे, उसी भाव से दे देंगे ।"

वह भी चौंका, लेकिन उसने भाजी ली और बाजार-भाव से पैसे देकर चला गया ।

एक संपन्न खरीददार पधारे, " बैंगन कैसे देंगे ?"

उत्तर मिला, " जैसे आप कहें, वैसे ही देंगे ।"

उसने भाजीवाले का पूरा टोकरा ही नौकर से उठावा लिया और एक पैसा देकर चलता बना ।

आगे जाकर उसने किसी दूसरे से कहा, " दुनिया में ऐसे मूर्ख लोग अभी भी हैं ।"

लेकिन शाम में इसी संपन्न व्यक्ति का नौकर आया और एक खीरा लेकर उसके आठ आने दे गया । मानों अपने मालिक की बेईमानी का प्रायश्चित कर रहा हो ।

श्रमाश्रम के इस प्रयोग की चर्चा सब तरफ फैल गयी । दूसरे दूकानदार भी श्रमाश्रमवालों से सहानुभूति रखते थे । एक दिन एक सज्जन ने अपना झोला सब्जियों से भर लिया और दो पैसे देकर जाने लगे तो दूसरा सब्जीवाला डंडा लेकर दौड़ा, " शर्म नहीं आती है तुम्हें ? सब्जी मेहनत से पैदा हुई है और उसे हराम का समझकर लिये जा रहे हो !"

बाद में जाकर श्रमाश्रम का यह प्रयोग बंद करना पड़ा । यह युवक बीमार पड़ गया, और लालच से बीमार इस समाज में ईमानदारी पर आधारित ऐसे प्रयोग का चलना कठिन भी था ।

श्रमाश्रम बंद हुआ लेकिन उस युवक के दिल में जलती आग ठंडी नहीं हुई । समाज की गैर-बराबरी मिटनी ही चाहिए, और इसके लिए हर आदमी को कुछ-न-कुछ करना चाहिए, यह सोचकर उसने भंगी का काम शुरू कर दिया ।

कभी का वह वकील युवक, मल का डब्बा सर पर उठाकर फेंकने लगा।

एक अंधेरी रात थी। घनघोर बारिश हो रही थी। मैला फेंकने का काम समाप्त कर वह युवक घर लौट रहा था। लोगों का आना-जाना जारी था। अचानक बिजली चमकी और उस युवक ने देखा कि सड़क किनारे की नाली में कोई गिरा हुआ है। बिजली की चमक में वह इससे ज्यादा कुछ देख नहीं सका। दूसरों ने भी देखा पर किसी को रुकने की फुर्सत नहीं थी।

वह युवक वहीं रुक गया। आदमी नाली में क्यों गिरा है? यह कौन है? यदि धोखे से गिर गया है तो निकल क्यों नहीं आता? यह वहीं क्यों पड़ा है? एक-एक कर कितने सारे सवाल उसके दिमाग में उठे। उसने उस आदमी को नाली से खींचकर निकाला। रोशनी में उसे देखकर उसके रोंगटे खड़े हो गये।

नाली में गिरा वह आदमी कोढ़ी था। उसके हाथ-पांव कोढ़ से गल गये थे। वह विकलांग हो चुका था। वह

आदमी नहीं, एक हिलती-डुलती लाश लग रहा था।

आदमी की यह दशा देखकर एक बार उस बहादुर युवक की हिम्मत भी जवाब दे गयी। लेकिन उसके भीतर से किसी ने कहा, "इसे ऐसा ही छोड़कर तू चला जायेगा ?"

युवक ने उस कोढ़ी को अपने कंधे पर लादा और बारिश में भींगता हुआ अपने घर आया।

बारिश की उस अंधेरी रात के बाद से, एक ऐसी कहानी शुरू हुई जिसने सैकड़ों कोढ़ियों के जीवन में आत्मविश्वास की रोशनी फैला दी। उस युवक को जीवन का एक नया रास्ता मिल गया। जो लोग जीवन को अपने भरोसे जी नहीं सकते, उन्हें जीवन जीने लायक बनाने का एक संकल्प उसने कर लिया और इस संकल्प में से जन्म हुआ आनंदवन का।

महाराष्ट्र राज्य के चंद्रपुर जिले में उस युवक ने कुछ जमीन खरीदी। ६ कुष्ठ रोगियों, एक लंगड़ी गाय तथा चौदह रुपये की पूंजी लेकर वह वहां बस गया और आनंदवन नाम से एक आश्रम की शुरुआत की।

आनंदवन– दुःखी, निराश लोगों के जीवन में आनंद की अखंड धारा बहाने का ही तो संकल्प था उसका !

उस युवक ने कुष्ठ रोगियों से कहा, "मैं आपकी उतनी ही मदद करूंगा, जिससे आप खुद अपनी मदद कर सकें। यह आश्रम हमारा है और हमें इसका सारा काम करना होगा।"

आश्रम का सारा काम कुष्ठ रोगियों के जिम्मे बांट दिया गया। खेती, राजगिरी, कताई-बुनाई से लेकर श्रम के दूसरे कामों में वे रोगी जुट गये, जो कलतक अपने को हर काम से लाचार समझते थे।

चंद्रपुर में धीरे-धीरे एक नंदनवन बन गया। जिन कुष्ठ रोगियों से लोग अपना दामन बचाते थे, उन्हीं लोगों ने इतनी सुंदर जगह का निर्माण कर दिया।

आनंदवन ने लोगों का ध्यान अपनी ओर खींचा। सेवा के कामों में रुचि रखनेवाले लोग, संस्थाएं आगे आयीं। और उस युवक का नाम धूमकेतु की तरह कौंध गया– बाबासाहब आमटे !

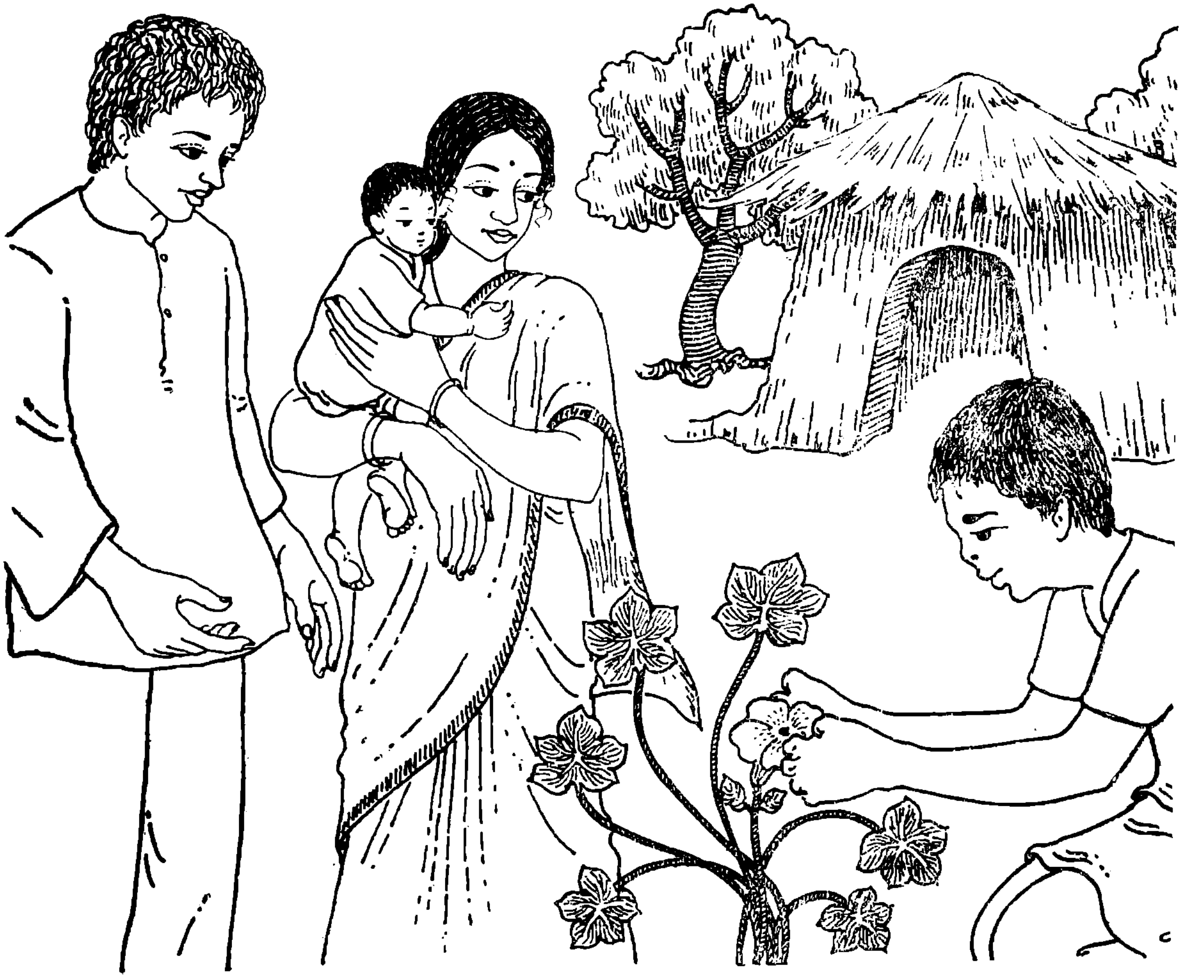

बाबासाहब ने कहा, " कुष्ठ रोगियों की समस्या मात्र शारीरिक नहीं है। रोग तो दूर हो भी जायेगा । उनकी सामाजिक समस्याएं हल करनी पड़ेंगी । इन्हें आत्मविश्वास से जीना सिखाना होगा ताकि ये अपने पांवों पर खड़े हो सकें ।"

विदेश की दो संस्थाओं ने आनंदवन के लिए मकान, औजार आदि की बड़ी सहायता दी । कुष्ठ रोगियों की शारीरिक क्षमता बढ़ानेवाले वैज्ञानिक साधन दिये ।

आनंदवन में बाबासाहब की श्रमाश्रम की कल्पना फिर साकार हो उठी। अपने देश के नागरिक भी आगे आये और आश्रम में निर्माण का कई काम उन्होंने किया।

अब आनंदवन में सात सौ से भी अधिक कुष्ठरोगी थे।

एक बड़ी संस्था ने आनंदवन को १,२०० बोरे गेहूं की सहायता भेजी। बाबासाहब ने उनको लिखा, "आपकी सहायता के लिए धन्यवाद। आपने जितना गेहूं भेजा है वह आनंदवन को एक वर्ष तक आनंद दे सकेगा। उसके बाद? क्या यह अच्छा न होगा कि आप हमें खेती की आधुनिक विधि सिखाएं ताकि आनंदवन का आनंद स्थायी बन सके?"

आस्ट्रेलिया की उस संस्था ने अपने कृषि-विशेषज्ञ भेजे जिन्होंने रोगियों को खेती और मधुमक्खी पालन की नयी विधियां सिखलायीं।

आनंदवन का विस्तार हुआ—मुक्ति-सदन और आनंद-निकेतन की स्थापना हुई। कुष्ठ रोग से मुक्ति पाने के बाद लोग मुक्तिसदन में रहते हैं। आनंद निकेतन में रोगियों और उनके बच्चों की पढ़ाई होती है।

आनंदवन आज भी है और हजारों कुष्ठ रोगियों की सेवा में लगा है। उसका स्वरूप बड़ा हुआ है लेकिन बाबासाहब आमटे अपने काम में उसी प्रकार डूबे हैं, जिस प्रकार उस काली, बरसाती रात में एक कुष्ठरोगी को लेकर वे डूब गये थे। न झूठी प्रतिष्ठा, न सम्मान; न सत्ता, न धन, केवल अपने जीवन से उनके जीवन को योग्य बनाने की चाह, जो अयोग्य हो गये हैं।

बाबासाहब आमटे, उनकी पत्नी साधनाताई, उनके लड़के, उनकी पुत्रवधु सब उसी राह पर चल रहे हैं, जिस राह पर चलनेवाले लोगों ने इस दुनिया को रहने लायक बनाया है। ●

हमारे आगामी प्रकाशन

- सावित्री की कहानी
- संत मूलदास
- हजरत राबिया बसरी
- मीरा
- सच्ची मित्रता
- दैत्य से देव
- गुरू गोविंद सिंह
- कौन जीता ?
- नटखट कृष्ण कन्हैया
- सच की जीत

हिन्दुस्तानी प्रचार सभा की स्थापना १९३८ में महात्मा गांधी की प्रेरणा तथा पेरीन बहन केप्टन के सद्प्रयत्नों से हुई थी। इस संस्था की कोशिश ऐसी राष्ट्रभाषा विकसित करने की रही है, जिसे आम जनता आसानी से समझ सके और जो नागरी व उर्दू दोनों लिपियों में लिखी जा सके। वह भाषा है हिन्दुस्तानी !

हिन्दुस्तानी प्रचार सभा दुनिया के सभी धर्मों से चुनी हुई, ज्ञान और आनन्द से भरी कहानियों की एक सौ किताबों का जो सेट बच्चों के लिए तैयार कर रही है, यह उसकी तीसरी किश्त है। इस सेट के हर किताब की कीमत दो रुपये होगी।

बच्चों की कहानियां

हिन्दुस्तानी प्रचार सभा

महात्मा गांधी मेमोरियल बिल्डिंग

बम्बई—४०० ००२

एकमात्र विक्रेता — **एस. चंद एंड कंपनी लि.**

पोस्ट बॉक्स नं. ५७३३

राम नगर, नयी दिल्ली — ११००५५